International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(3): 62-65

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(3): 62-65
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 11-03-2018
Accepted: 12-04-2018

विपन कुमार
पी०एच०डी० शोधछात्र
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय,
जम्मू और कश्मीर, भारत

Correspondence
विपन कुमार
पी०एच०डी० शोधछात्र
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय,
जम्मू और कश्मीर, भारत

वैदिक वाङ्मय की मूल संहिताओं में उपलब्ध पर्यावरण विज्ञान

विपन कुमार

वैदिक युग पर्यावरण का अत्युत्तम काल माना जाता है। तत्कालीन प्रकृति स्वच्छ सुगन्धयुक्त वायु प्राणों का वर्धन किया करती थी। पवित्र जल नदियों और जलाशयों में अवगाहन करने वालों के शरीर को ही नहीं बल्कि अन्तःकरण शुद्धि में भी सहायक था। ऋषियों के आश्रम एवं गुरुकुल सुरम्य–शान्त कान्तार प्रदेश में अवस्थित थे। सर्वत्र यज्ञ के विशुद्ध धूम पर्यावरण को न केवल शुद्धि प्रदान करते थे अपितु एक असीम शान्ति और आध्यात्मिक प्रीति पल्लिवित करते थे। वनों की हरियाली में वन–जीवों का स्वच्छन्द विचरण और पक्षियों का कोलहल मधुर रस उत्पन्न करता था। ऐसी मनोरम–निरापद प्रकृति के वातावरण में त्रिकालज्ञ ऋषियों ने अपनी तपस्या के योग से जिन ऋचाओं का साक्षात्कार किया वे सत्य ही ईश्वर के निःश्वसित हैं। ये वही ज्ञान के परम आकर वेद है जो देवों के अमर काव्य और मानवमात्र की अमूल्य नीधि हैं।[1]

ऋग्वेद सम्पूर्ण विश्व–वाङ्मय का उपलब्ध आदि ग्रन्थ है। यद्यपि इसमें तत्तद् देवों की स्तुतियाँ है तथापि प्रकृति के अपार रूप सम्भार की विविधता इसमें पद–पद पर विलसित है। आधुनिक वैदिक व्याख्याकारों का मानना है कि प्रकृति के विभिन्न रूपों का मानवीकरण करके ऋषियों ने तत्तद् देवताओं के स्वरूप की कल्पना की है। अतः निःसन्देह ऋग्वेद, पर्यावरण विज्ञान जैसे आधुनिक विषय को भी सूक्ष्म रूप में अपने में धारण किये हुए हैं।[2]

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के तृतीय सूक्त के अन्तिम तीन ऋचाओं में सरस्वती की स्तुति है। सरस्वती ज्ञान की देवी और सरस्वती नदी, दोनों ही रूपों में प्रसिद्ध है। नदी के रूप में सरस्वती की अपार जल राशि का वर्णन ऋषि के शब्दों में ऋग्वेद में अधोलिखित रूप में देखने को मिलता है। यथा –

पावकाः न सरस्वती वाजेभिर्वजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः
चोदयित्री सुनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सस्वती
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा वि राजति[3]

उपर्युक्त ऋचाओं में सरस्वती नदी की विशाल जलराशि और उसमें उत्पन्न होने वाली तरङ्गों का चारुचित्रण है जिसका साक्षात्कार करके सद्विचारों का उत्प्रेरण होता है।[4]

इन्द्र की प्रिय सत्यरूप वाणी पकी हुई शाखा जैसी बताया गया है –

'एवा हयस्य सुनृता विरप्शी गोमती मही। पक्वा शाखा न दशुषे'[5]

इस मन्त्र में उपमा का प्रयोग किया गया है। स्वस्थ वृक्ष की डाल, जो पके हुए सुन्दर फलों से लदी हुई है। मनोरम तो लगती ही है, याचक के लिये प्रकृति का उपहार रूप फल भी प्रस्तुत करती है।

वनस्पतियों से ही देवताओं के लिए हविसामग्री प्राप्त होती है और वे वनस्पतियाँ चेतना अर्थात् ज्ञान प्रधान करती हैं।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल की अधोलिखित ऋचा में वनस्पति से हवि प्रदान करने के साथ ही चेतना अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने की प्रार्थना की गई है–[6]

अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः।
प्र दातुरस्तु चेतनम्।[7]

उपर्युक्त मन्त्र से हमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि वनस्पति भी चेतन प्राणी स्वरूप है। वस्तुतः चेतन ही चेतना प्रदान कर सकता है। वैज्ञानिकों ने सौ डेढ़ सौ साल पहले ही यह सिद्ध किया था कि वनस्पतियों में भी चेतना होती है किन्तु वनस्पतियों में चेतना का ज्ञान वैदिक वाङ्मय में सर्वथा उपलब्ध है।[8]
जल स्वयं औषधि स्वरूप है और जल में समस्त औषधियाँ विद्यमान हैं। ऋग्वेद की अधोलिखित ऋचाओं में ऋषि इसी बात का उद्घाटन करता है। यथा–

अप्सु मे सोमो अब्रवीदुन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजी।
आपः पृणीत भेषजं वरुथं तन्वेइमम्।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ।
इदमापः प्र वहत यत् किं च दुरितं मयि।
यद् वाहमभिदुद्रोह यद् वा शेप उतानृतम्।
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा।[9]

अर्थात् जल में सभी औषधियाँ विद्यमान हैं। जल औषधि स्वरूप ही है। यह जल मेरे शरीर में सभी औषधियों को ले आये। यह जल मेरे अन्दर की सभी बाधाओं को दूर करे। मैं जल में अवगाहन कर रहा हूँ। मेरे अन्दर आनन्द का संचार हो।
ऋग्वेद संहिता में नदियों की महिमा का अनेक स्थानों पर वर्णन मिलता है। गङ्गा आदि सप्त नदियों को जल का विशेष उत्पादक बताया गया है –

'सिन्धुभिः सप्त मातृभिः'[10]
तीव्र बहने वाला मरुत अपने वेग से समस्त पर्वतों को कँपाता है और वृक्षों को अलग–अलग कर देता है जैसा कि ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि –

प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि वि०चन्ति वनस्पतीन्।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा।[11]

औषधियों, पर्वतों, जलों और मनुष्यों में जो धन है, उनका स्वामी अग्नि है जैसे कि निश्चल किरणों का स्वामी सूर्य है। यथा –

आ सूर्ये न रश्मयों श्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि।
या पर्वतेध्वोषधीष्वप्सु या भानुषेष्वसि तस्य राजा।।[12]
ऋषि का कथन है कि हमारे जीवन के लिये द्युलोक पिता और भूमि धारण करने के कारण हमारी माता है। वायु हमें प्राण प्रदान करता है और सोमरस के निष्कर्षण के कारण पत्थर भी हमारे हितकारी हैं। ये सभी हमें औषधि प्रदान करें। ऋग्वेदीय ऋषि की मान्यता है कि –

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदरिबना शृणुतं धिष्ण्या युवम।।[13]

ऋषि समस्त पर्यावरण से मधु प्रदान करने की कामना करता है। ऋषि वायु, सिन्धु, औषधियों, उषा, पृथ्वी, द्युलोक, वनस्पति, सूर्य और गायों से मधुमान होने की प्रार्थना करता है। ऋग्वेद में विष्णु की स्तुति करते हुये उसे पृथ्वी पर विचरण करने वाले, पर्वतों में निवास करने वाले भयंकर सिंह की तरह बताया गया है।[14]
ऋग्वेद के प्रथम मण्डल की अधोलिखित ऋचा में लौकिक दृष्टि से जीव और ब्रह्म की स्तुति की गई है। दो पक्षी एक साथ मैत्री भाव से एक ही वृक्ष पर बैठे हुये हैं। एक पक्षी वृक्ष के मधुर फल का आस्वादन कर रहा है और दूसरा पक्षी फल का बिना भोग करते हुए भी सुशोभित हो रहा है। यथा –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।।[15]

ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक प्रसङ्ग में पर्यावरण के अनेक घटकों का एक साथ ही उल्लेख इस प्रकार किया गया है –

सूर्यं चक्षुगर्च्छतु वातामात्मा द्यां च गच्छ पृथ्वीं च धर्मणा।
अपो वा गच्छ यदि तत्र तेहि तमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः।।[16]

गायें अपने पालकों के साथ विचरण करती हुई तृण चर रही हैं और गोपालक उनसे दुग्ध–दोहन की इच्छा करते हैं –

गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन् ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः।
हवा इदर्यो अभितः समायन कियदासु स्वपतिश्छन्दपाते।।[17]

ऋषि जल देवता को धृत, दुग्ध और मधुरस से परिपूर्ण देखता है। यह जल देवता ही इन्द्र के लिये सोम भी धारण करता है।[18]
ऋग्वेद का दशम मण्डल का 58 सूक्त पर्यावरण की पुनस्संस्थापना के लिये ऋषि के द्वारा साक्षात् कृत है। इस सूक्त में पुनजर्विन के लिये मन, पृथिवी, आकाश, भूमि, दिशायें, समुद्र, मेघ, प्रकाश, जल, औषधि, उषा, पर्वत और समस्त विश्व जो जन से दूर चले गये हैं, उन्हें वापस बुलाने का उपक्रम किया जा रहा है।[19] जैसे वर्तमान काल में पर्यावरण का शुद्ध रूप हम से दूर चला जा रहा और जिसके कारण हमारा जीवन संकटग्रस्त हो चला है और हमारा प्रयत्न हो रहा है कि पर्यावरण के पूर्व रूप को हम वापस बुलायें, उसे प्रदूषण मुक्त करके, कटे हुए वनों को पुनः अरोपित करके, वैसी ही अभिकल्पना ऋग्वेद के दशम मण्डल के 58वें सूक्त में दृष्टिगोचर होती है।[20]
नदियाँ भारतवर्ष की प्राण प्रदान करने वाली शक्तियाँ हैं और हमारे राष्ट्र की जनता के लिये वे सर्वस्व हैं। आर्यों ने इस देश को अपने स्थायी निवास के लिये शायद इसलिये चूना था क्योंकि यहाँ पर नदियों और विशाल झीलों की अधिकता थी। आर्यों को नदी तट अत्याधिक प्रिय था और बहुधा आर्य ऋषियों के आश्रम नदियों के तट पर ही हुआ करते थे, क्योंकि आध्यात्मिक और भौतिक कामनाओं की पूर्ति के लिये नदियों का महत्त्व था।[21]
पृथ्वी पर ऐसे दानशील देवताओं का वास है जिन्होंने अन्न, गायें, अश्व, औषधि, वनस्पति, पृथ्वी, पर्वत जलादि को बनाया है। अन्तरिक्ष में सूर्य को चढ़ाया है और श्रेष्ठ यज्ञों का विस्तार किया है। इसका वर्णन ऋग्वेद के दशम मण्डल में अधोलिखित रूप में किया गया है –

ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन् पृथिवीं पर्वतां अपः।
सूर्यं दिपि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि।।[22]

वस्तुतः जल ही सब कुछ है, वह ही प्राणभूत तत्त्व है। जल से ही सब उत्पन्न और जल ही सर्वप्रथम उत्पन्न है। देव मेघों के द्वारा जलवृष्टि इस लोक में किया करते हैं और समुद्र में छिपे हुए सूर्य को निकाल कर इस लोक में तेज का स्थापन करते हैं। इसका वर्णन अग्रलिखित ऋचा में किया गया है –

यद्देवो यतवो यथा भुवनान्यपिन्वत।
अत्रा समुद्र आ गुल्हमा सूर्यमजभर्तन।।[23]

यजुर्वेद में यज्ञपरक ऋचाओं का संकलन है, किन्तु वहाँ भी पर्यावरण से सम्बन्धित अङ्गों का यत्र–तत्र उल्लेख मिलता है। शुक्ल–यजुर्वेद का सोलहवां अध्याय, जिसे रुद्राध्याय भी कहते हैं में पर्यावरण का अति मनोरम निदर्शन है। ऋषि सम्पूर्ण चराचर प्रकृति को रुद्रमय मानकर पृथ्वी और आकाशादि सकल जगत् में व्याप्त समस्त वस्तुओं को रुद्र के रूप में वर्णित करता है।[24] यहाँ उदाहरण स्वरूप कुछ मन्त्रों का वर्णन प्रस्तुत है।

रुद्र पशुओं के स्वामी अर्थात् पालक हैं। उनके केश वृक्षों के हरे पत्ते हैं –

न्मो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशुना पतये नमो नमः।[25]

रुद्र अन्नों के, खेतों के तथा वनों के रक्षक हैं –

अन्नानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो नमो।
रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्यै वनानांपतये नमः।[26]

रुद्र औषधियों के स्वामी हैं, वनस्पतियों के स्वामी भी हैं –

औषधीनां पतये नमः, कक्षाणां पतये नमः।[27]

उर्वर भूमि में उत्पन्न और खेत–खलिहान में होने वाला रुद्र है –

नमः उर्वर्याय च खल्याय च।[28]

रुद्र वन में तथा तृणादि में होने वाला है –

नमो वन्याय च कक्ष्याय च।[29]

रुद्र बालु में, जल प्रवाह में, छोटे, कंकड़–पत्थरों में और शीघ्र सूखने वाले जलाशयों में भी होता है –

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः।
किंशिलाय च क्षणयाय च नमः।।[30]

रुद्र गायों के समूह और गोष्ठों में भी होता है, वह खाइयों में और कन्दराओं में भी अवस्थित होता है –

नमो व्रज्याय च गोष्ठयाय च नमस्तल्प्याय च गोह्याय च नमो
ह्रदयाय च निवेष्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च।।[31]

इस प्रकार ऋषि सर्वत्र पर्यावरण में रुद्र देव को देखता है –

सर्व रुद्र मयं जगत्।[32]

वह एक सुन्दर, स्वरूप और मानव–जीवन के लिए कल्याणकारी पर्यावरण की कामना करता है।

अथर्ववेद में भी पर्यावरण के प्रति मानव प्रेम का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद का प्रथम मन्त्र ही पर्यावरण–मानव सम्बन्ध का उल्लेख करता है –

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रुपाणि विभ्रतः।
वाचस्पर्तिबला तेषां तन्वो अद्य दधातु में।[33]

ब्रह्मा से यह कामना की गई है कि प्रकृति के जो इक्कीस विभिन्न रूपधारी उपादान हैं उन सबके बल को हमारे शरीर धारण करें। आकाश और पृथ्वी, जल तथा अन्न से चराचर सम्पूर्ण जगत् को धारण करते हैं। वे आकाश और पृथ्वी हमें वितरण करें और हमें पापमुक्त करें। इसका वर्णन अथर्ववेद में भी इस रूप में मिलता है।

ये कीलालने तर्पयथो से धृतेन याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति।
द्यावापृथिवी भवतं में स्योने ते नो मु०चतमंहसः।[34]

सभी नदियाँ हमारे अनुकूल प्रवाहित हो, वायु सुखद बहे और पक्षी तथा तदुपलक्षित समस्त जीव हमारे अनुकूल आचरण करें। अथर्ववेद में इसका वर्णन अग्रलिखित रूप में किया गया है –

सं सं स्त्रवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पतत्रिणः।[35]

औषधियों के सम्बन्ध में अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि औषधियाँ रोगनिर्वारण के लिए सर्वथा समर्थ हों –

नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदम रजनि रजय किलासं पलितं च यत।[36]

विविध प्रकार के स्त्रोतों से प्राप्त जल को अथर्ववेद में रोगादि निवारक बतलाया गया है –

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मु०चन्तु क्षेत्रियात्।।[37]

हवाओं से प्रेरणा पाकर मेघ भूमि पर जल की वर्षा करते हैं, इसे तृप्त करके औषधियों एवं अन्नादि का पोषण करते हैं। जिन जलाशयों से हमारी गायों के पीने के लिये जल प्राप्त होता है और जिनके द्वारा यज्ञों में हवि बनाया जाता है, उस जल के गुणों की हमें प्रशंसा करनी चाहिये। इसका निम्नलिखित रूप में वर्णन मिलता है –

आपो देवीरूपं हये यत्र गावः पिबन्ति नः।
सिन्धुभ्यः कर्त्व हविः।[38]

गायों से ऋषि प्रार्थना करता है कि वे हमारे घर में आवें, पुष्ट हों और उत्तम बछड़े उत्पन्न करें और हम गृहस्थों से प्रेम करती हुई आनन्द से रहें –

इहैव गाव एतनेहो शकेय पुष्यत।
इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः।।[39]

कृषि आदि कार्यों के लिए पृथ्वी को खोदते हुए मनुष्य स्वयं उस पीड़ा का कैसा अनुभव करते हुए दुख एवं प्रायश्चित व्यक्त करते है, इसका उल्लेख अधोलिखित रूप में अथर्ववेद संहिता में दृष्टिगोचर होता है –

यत् ते भूमि विखनामि क्षिप्रं तदापि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते ह्रदयमर्पिपम्।।[40]

पर्यावरण के प्रति मानव की कल्याणपरक चेतना की अभिव्यक्ति पिछले मन्त्र में स्पष्टतः लक्षित होती है। भूमि, दान एवं क्षमाशीलता के द्वारा समस्त जीवों का परिपालन करते हुये पर्यावरण को व्यवस्थित रखती है – इसका अनुभव हमारे ऋषियों ने किया था। इसलिये वे पृथिवी को माता मानकर उससे प्रार्थना करते हैं कि –

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रातिष्ठम्।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्।।[41]

वैदिक वाङ्मय की मूल संहिताओं में पर्यावरण विज्ञान और उसके प्रति मानवीय दृष्टिकोण तथा उसके संरक्षण की कामना आदि का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार पर्यावरण के प्रति हमारे पूर्वजों के भाव ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों और पुराणों में यत्र–तत्र व्यक्त प्राप्त मिलते हैं। निष्कर्षतः यह ज्ञापित होता है कि वैदिक मूल संहिताओं में पर्यावरण के प्रत्येक पक्ष का उल्लेख किया गया है। पर्यावरण विज्ञान का मूल आधार वेद और वैदिक वाङ्मय ही है।

संदर्भ सूची

1. संस्कृत वाङ्मय और पर्यावरण–संरक्षण, डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी, पृष्ठ–53 से उद्धृत
2. संस्कृत वाङ्मय और पर्यावरण–संरक्षण, डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी, पृष्ठ–53 से उद्धृत
3. ऋग्वेद, 1/3,10,11,12
4. संस्कृत वाङ्मय और पर्यावरण–संरक्षण, डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी, पृष्ठ–54 से उद्धृत
5. ऋग्वेद, 1/8/8
6. संस्कृत वाङ्मय और पर्यावरण–संरक्षण, डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी, पृष्ठ–54 से उद्धृत
7. ऋग्वेद, 1/13/11
8. संस्कृत वाङ्मय और पर्यावरण–संरक्षण, डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी, पृष्ठ–55 से उद्धृत
9. ऋग्वेद, 1/23/20–23
10. ऋग्वेद संहिता – भट्टाचार्य श्रीपाद शर्मा, पृष्ठ–21 से उद्धृत
11. ऋग्वेद, 1/39/5
12. ऋग्वेद, 1/59/3
13. ऋग्वेद, 1/90/6,8,9
14. ऋग्वेद, 1/154/2
15. ऋग्वेद, 1/164/20
16. ऋग्वेद, 10/16/14
17. ऋग्वेद, 10/27/8
18. ऋग्वेद, 10/30/13
19. ऋग्वेद, मण्डल–10, सूक्त–58
20. संस्कृत वाङ्मय और पर्यावरण–संरक्षण, डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी, पृष्ठ–62, 63 से उद्धृत
21. वैदिक साहित्य और संस्कृति, वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ–48 से उद्धृत
22. ऋग्वेद, 10/65/11
23. ऋग्वेद, 10/72/7
24. संस्कृत वाङ्मय और पर्यावरण–संरक्षण, डॉ० प्रभुनाथ द्विवेदी, पृष्ठ–67,68 से उद्धृत
25. शुक्लयजुर्वेद, 16/17
26. शुक्लयजुर्वेद, 16/18
27. शुक्लयजुर्वेद, 16/19
28. शुक्लयजुर्वेद, 16/33
29. शुक्लयजुर्वेद, 16/34
30. शुक्लयजुर्वेद, खण्ड–1, 16/43
31. शुक्लयजुर्वेद, खण्ड–1, 16/44
32. शुक्लयजुर्वेद, 16 अध्याय से उद्धृत
33. अथर्ववेद, खण्ड–1, आचार्य डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम', पृष्ठ–1 से उद्धृत
34. अथर्ववेद, 4/26/6
35. अथर्ववेद, 1/15/1
36. अथर्ववेद, 1/23/1
37. अथर्ववेद, 3/7/5
38. अथर्ववेद, 1/4/3
39. अथर्ववेद, 3/14/13
40. अथर्ववेद, 12/1/35
41. अथर्ववेद, 12/1/63